

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

शांति देवी एवं अन्य

बनाम

राज कुमार सिंह

2019 की दीवानी विविध क्षेत्राधिकार प्रकरण क्रमांक 285

14 अगस्त 2024

(माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण कुमार झा)

विचार के लिए मुद्दा

क्या विद्वान विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता की याचिका को दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के अंतर्गत सही तरीके से खारिज किया ?

हेडनोट्स

दीवानी प्रक्रिया संहिता--- आदेश 7 नियम 11, आदेश 23 नियम 3 ए, धारा 11---रेस जुडिकाटा (पूर्व निर्णित मामला) के आधार पर वादपत्र की अस्वीकृति----समझौता डिक्री को चुनौती----आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए याचिका जिसके तहत विद्वान विचारण न्यायालय ने लंबित विभाजन मुकदमे में आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत मूल याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका को खारिज कर दिया।

निर्णय: विवाद्यक शिकायत के मात्र अवलोकन से यह तथ्य खुलकर सामने आता है कि शिकायत की विषय-वस्तु एक ही है तथा इसे उन्हीं पक्षों के साथ एक ही कारण से दायर किया गया है, जिसमें विभाजन वाद संख्या 136/1970 दायर किया गया था तथा प्रथम अपील संख्या 349/1978 के 1989 में खारिज होने के साथ ही अंतिम रूप ले लिया गया था---विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई मामला सीधे तथा सार रूप से उन्हीं पक्षों के बीच औपचारिक वाद में विवाद्यक है, तो उसे किसी अन्य न्यायालय द्वारा किसी अनुवर्ती वाद में नहीं सुना जाएगा---विद्वान विचारण न्यायालय इस बिन्दु पर ध्यान नहीं दे पाया कि उत्तरदाता का वाद संहिता की धारा 11 के अन्तर्गत रेस जुडिकाटा (पूर्व निर्णित मामला) के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है---संहिता का आदेश 23 नियम 3 ए विशेष रूप से इस आधार पर डिक्री को अपास्त करने के उद्देश्य से अन्य वाद को संस्थाबद्ध करने पर रोक

लगाता है कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित थी वह विधिसम्मत नहीं था---जब विधानमंडल ने यह प्रावधान किया है कि इस आधार पर डिक्री को अपास्त करने के लिए कोई वाद नहीं लाया जा सकता कि जिस समझौते के आधार पर डिक्री नहीं दी जा सकती थी--- विद्वान विचारण न्यायालय ने अधिकार क्षेत्र की पूर्ण त्रुटि के तहत आक्षेपित आदेश पारित किया - आक्षेपित आदेश को रद्द किया गया - याचिका स्वीकार की गई। (अनुच्छेद 7, 9, 10, 13, 15)

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका की संधारणीयता और रखरखावीयता के बीच अंतर----भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपाय एक संवैधानिक उपाय है और किसी दिए गए मामले में न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, यदि उसकी राय में, पीड़ित पक्ष के पास दी.प्र.स. के तहत उपलब्ध कोई अन्य प्रभावी उपाय है----लेकिन यह कहना कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका बिल्कुल भी रखरखाव योग्य नहीं होगी, तर्कसंगत नहीं है----एक बार जब मामला इस न्यायालय के समक्ष आ गया और उस पर सुनवाई हो गई, तो याचिकाकर्ता को दूसरी याचिका दायर करने के लिए भेजना पूरी तरह से अनुचित है और इससे समय की बर्बादी होगी। (अनुच्छेद 14)

न्याय दृष्टान्त

राज श्री अग्रवाल उर्फ राम श्री अग्रवाल और अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1775.....पर भरोसा किया गया।

अधिनियमों की सूची

दीवान प्रक्रिया संहिता, भारतीय संविधान

मुख्य शब्दों की सूची

विभाजन वाद---वाद की अस्वीकृति--- रेस जुडिकाटा (पूर्व निर्णित मामला)--- समझौता डिक्री को चुनौती--- मुद्दा सीधे और मूल रूप से मुद्दा---- समान पक्षों के साथ कार्रवाई का एक ही कारण--- क्षेत्राधिकार की त्रुटि--- भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका की संधारणीयता और रखरखाव के बीच अंतर और भेद।

प्रकरण से उत्पन्न

विभाजन वाद संख्या 56/2008 में विद्वान उप न्यायाधीश-1, दरभंगा द्वारा पारित दिनांक 25.10.2018 का आदेश।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता/ओं के लिए: श्री जे.एस. अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता

श्री प्रभात रंजन सिंह, अधिवक्ता

उत्तरदाता /ओं के लिए: श्री राम बली झा, अधिवक्ता

हेडनोट बनाया गया: घनश्याम, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

2019 की दीवानी विविध क्षेत्राधिकार प्रकरण क्रमांक 285

=====

- 1.1. शांति देवी, पति दिवंगत खोजेंद्र सिंह, निवासी शाहखेड़ा, पघड़ी, थाना बहेरी, जिला- दरभंगा।
- 1.2. धर्मेन्द्र कुमार सिंह, पिता दिवंगत खोजेंद्र सिंह, निवासी शाहखेड़ा, पघड़ी, थाना बहेरी, जिला- दरभंगा, वर्तमान में निवासरत सी/ओ पुष्पा सिंह, फ्लैट संख्या 1 (बी), ब्लॉक-4, तीरथ प्रोजेक्ट, सलुआ थाना, कोलकाता हवाई अड्डा, राजारहाट, जिला- 24-उत्तर परगना, पश्चिम बंगाल।
- 1.3. शैलेंद्र कुमार सिंह, पिता दिवंगत खोजेंद्र सिंह, निवासी शाहखेड़ा, पघड़ी, थाना बहेरी, जिला- दरभंगा वर्तमान में निवासरत एस-1, रोहतास नगर फेज-2, सताक्षी गार्डन, खजुरी कलान, पिपलानी, हजुर, थाना -अवधपुरी, जिला -भोपाल, (मध्य प्रदेश)।

1.4. जैनेंद्र कुमार सिंह, पिता दिवंगत खोजेंद्र , निवासी शाहखेड़ा, पघड़ी, थाना बहेरी, जिला-
दरभंगा, वर्तमान में निवासरत कनक भवन, लक्ष्मीपुर, बलभद्रपुर, थाना लहेरियासराई,
जिला-दरभंगा ।

..... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम्

राज कुमार सिंह, पिता श्री मिथिलेश प्रसाद सिंह, निवासी गांव- शंखेड़ा, पोस्ट- बहेरी, थाना
बहेरी, जिला-दरभंगा

..... उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति :

याचिकाकर्ता/ओं के लिए:

श्री जे. एस. अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता

श्री प्रभात रंजन सिंह, अधिवक्ता

उत्तरदाता/ओं के लिए:

श्री राम बली झा, अधिवक्ता

=====

गणपूर्ति : माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण कुमार झा

सी. ए. वी. निर्णय

दिनांक : 14-08-2024

वर्तमान याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर की गई
है जिसमें विद्वान उप न्यायाधीश-1, दरभंगा द्वारा विभाजन वाद संख्या 56/2008 में पारित
आदेश दिनांक 25.10.2018 को निरस्त करने का अनुरोध किया गया है, जिसके द्वारा और
जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने मूल याचिकाकर्ता द्वारा दीवानी प्रक्रिया संहिता

(जिसे आगे 'संहिता' कहा जाएगा) के आदेश 7 नियम 11 के तहत दायर याचिका दिनांक 04.09.2015 को खारिज कर दिया था।

2. मामले का संक्षिप्त विवरण, जैसा कि अभिलेख से प्रतीत होता है, यह है कि उत्तरदाता ने 2008 का विभाजन मुकदमा संख्या 56 दिनांक 29.03.2008 को विद्वान उप न्यायाधीश-1, दरभंगा के न्यायालय में दायर किया, जिसमें मूल याचिकाकर्ता को उत्तरदाता प्रथम सेट और अन्य 122 व्यक्तियों को उत्तरदाता द्वितीय और तृतीय सेट के रूप में शामिल किया गया। 2008 का विभाजन मुकदमा संख्या 56 निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए दायर किया गया है:

“(1) यह कि उपरोक्त तथ्य पर विचार करते हुए, न्यायालय, उप न्यायाधीश, दरभंगा के न्यायालय द्वारा विभाजन वाद संख्या 136/70 में पारित डिक्री को अपास्त करने की कृपा करे।

(2) यह कि न्यायालय से प्रार्थना है वह यह घोषित करे और निर्णय दे कि विभाजन वाद संख्या 136/70 में पारित डिक्री, समझौते के आवरण में धोखाधड़ीपूर्वक याचिकाकर्ता के पिता एवं दादा की मिलीभगत से प्राप्त की गई थी। न्यायालय ने उस समझौते की समुचित रूप से जांच नहीं की, जिसके फलस्वरूप वाद एकतरफा रूप से संचालित हुआ और याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा नहीं की गई। अतः न्यायालय से प्रार्थना है कि वह घोषित करे कि उक्त डिक्री याचिकाकर्ता के लिए बाध्यकारी नहीं है।

(3) यह कि न्यायालय से प्रार्थना है कि वह उक्त डिक्री को याचिकाकर्ता के लिए बाध्यकारी न मानते हुए निरस्त कर, नया डिक्री पारित करने की कृपा करे।

(4) यह कि माननीय न्यायालय कृपया यह घोषित करे और निर्णय दे कि वह संपत्ति, जो वादी के दादा या उनके भाई के नाम पर है, उसका बंटवारा नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह संपत्ति वास्तव में वादी के परिवार की व्यक्तिगत संपत्ति है। वादी के दादा ने इस संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई, जबकि वह ऐसा कर सकते थे। यह संपत्ति वाद पत्र के

अनुसूची-1 और अनुसूची-2 में वर्णित है, और वही अनुसूचियाँ पूर्ववर्ती वाद में भी सम्मिलित हैं।

(5) यह कि न्यायालय से प्रार्थना है कि वह लागत के लिए डिक्री पारित करने की कृपा करे।”

3. मूल याचिकाकर्ता उपस्थित हुआ और उत्तरदाता द्वारा लगाए गए आरोपों/कथनों को नकारते हुए अपना लिखित बयान दायर किया और तत्काल मुकदमे को खारिज करने का अनुरोध किया और मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, मूल याचिकाकर्ता ने आदेश 7 नियम 11 के तहत विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की, जिसे संहिता की धारा 11 और 151 के साथ पढ़ा गया और जिसमें वाद याचिका को अस्वीकार करने का अनुरोध किया गया। उपरोक्त याचिका दिनांक 04.09.2015 की निरंतरता में एक और याचिका मूल याचिकाकर्ता द्वारा 07.06.2017 को दायर की गई है। विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 25.10.2018 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से दिनांक 04.09.2015 की याचिका को खारिज कर दिया, जिसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है।

4. श्री जे.एस. अरोड़ा, वरिष्ठ अधिवक्ता, जो याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत हैं, ने दृढ़ता से तर्क दिया कि विचारण न्यायालय का याचिका खारिज करने का आदेश विधि की दृष्टि से असंवैधानिक है क्योंकि उत्तरदाता द्वारा दायर याचिका की समग्र सीमा के भीतर पूर्व न्याय निर्णयन के सिद्धांत के अंतर्गत आती है। याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से अपनी याचिका में स्वीकार किया है कि इस मुद्दे में पहले ही समान पक्षकारों के बीच न केवल अधीनस्थ न्यायालय द्वारा बल्कि उच्च न्यायालय द्वारा भी निर्णय लिया जा चुका है। विद्वान विचारण न्यायालय इस बात पर भी विचार करने में विफल रहा है कि उत्तरदाता द्वारा मांगी गई राहत विद्वान विचारण न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है और इस प्रकार, उत्तरदाता द्वारा दायर वाद विचारणीय नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय के पास समन्वय क्षेत्राधिकार की न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को निरस्त करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है,

जिसकी पुष्टि वर्ष 1978 में ही उच्च न्यायालय तक की जा चुकी है। विद्वान विचारण न्यायालय को यह विचार करना चाहिए था कि उत्तरदाता समान पक्षों के बीच एक ही भूमि के संबंध में क्रमशः विचारण न्यायालय के साथ-साथ विभाजन वाद सं. 136/1970 के साथ-साथ प्रथम अपील सं.349/1978 में पारित उच्च न्यायालय के निर्णय से बाध्य है। श्री अरोड़ा ने आगे कहा कि एक सक्षम न्यायालय द्वारा पारित पहले के फैसले और डिक्री के साथ उत्तरदाता का असंतोष उसी मुद्दे पर मुकदमा दायर करने का आधार नहीं हो सकता है क्योंकि पहले के फैसलों ने अंतिमता प्राप्त कर ली है। श्री अरोड़ा ने आगे कहा कि मूल याचिकाकर्ता ने विभाजन मुकदमा संख्या 136/1970 दायर किया जिसमें उत्तरदाता के पिता को अवयस्क के रूप में वर्णित किया गया था, जो अपने पिता बिशेश्वर सिंह एवं अन्य सह-उत्तरदाताओं की अभिभावकता में थे, जो सह-भागीदार और खरीदार थे इस तथ्य को वाद में ही स्वीकार किया गया है। उत्तरदाता ने वर्तमान विभाजन का मुकदमा केवल इस आधार पर दायर किया है कि वादी के पिता का उचित प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था और उत्तरदाता के दादा द्वारा उनके अधिकार और हितों की रक्षा और संरक्षण नहीं किया गया था। श्री अरोड़ा ने आगे कहा कि इतने दूरगामी आधार के साथ, तत्काल मुकदमा दायर किया गया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने इस तथ्य की भी अनदेखी की है कि वाद के लंबित रहने के दौरान, उत्तरदाता के पिता ने वयस्कता प्राप्त किया, लेकिन उन्होंने डिक्री को चुनौती नहीं दी। इसके बजाय उत्तरदाता के पिता ने विभाजन को स्वीकार कर लिया है और उस पर कार्रवाई करते हुए, अपने बेटे/उत्तरदाता के पक्ष में अपनी भूमि के हिस्से के लिए 18.07.2018 दिनांकित एक बिक्री विलेख संपादित किया है। इसलिए, उत्तरदाता ने उस संपत्ति से भी निपटा है जो उसके पिता को विभाजन में मिली थी और उसे स्वामित्व मुकदमे में विरोधाभासी याचिका दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। बिक्री विलेख में पहले के विभाजन के बारे में विशिष्ट पाठ है। श्री अरोड़ा ने आगे कहा कि उत्तरदाता का जन्म विभाजन वाद सं. 136/1970 में डिक्री के बहुत बाद हुआ था और इसे चुनौती देने में उत्तरदाता का दुर्भावनापूर्ण इरादा

उपरोक्त तथ्य से स्पष्ट है। श्री अरोड़ा ने *दहीबेन बनाम अरविंद भाई कल्याणजी भानुसाली और अन्य (2020) 7 एससीसी 366* में सूचित किया गया के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, इस प्रस्ताव पर कि यदि न्यायालय को पता चलता है कि वादपत्र में कार्रवाई का कोई कारण नहीं बताया गया है, या कि वाद किसी कानून द्वारा वर्जित है, तो न्यायालय के पास वादपत्र को खारिज करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। श्री अरोड़ा ने *कर्नल श्रवण कुमार जयपुरियार बनाम कृष्ण नंदन सिंह व अन्य (2020) 16 एससीसी 594* में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि केवल यह संभावना या आशंका कि किसी अधिकार का उल्लंघन हो सकता है, बिना उस अधिकार के वैध आधार के, यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होती कि शिकायत में किसी कार्रवाई का कारण निहित है।

5. श्री अरोड़ा ने आगे कहा कि मुकदमा संहिता के आदेश 23 नियम 3 ए के तहत वर्जित है क्योंकि इस आधार पर एक डिक्री को निरस्त करने के लिए कोई मुकदमा नहीं होगा कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित थी वह वैध नहीं था। इस प्रकार, श्री अरोड़ा ने प्रस्तुत किया कि विद्वान विचारण न्यायालय, संहिता के आदेश 7 नियम 11 और आदेश 23 नियम 3 ए के विधायी आशय को समझने में पूरी तरह विफल रही है और इस प्रकार, उसने एक गलत आदेश पारित किया है जिसे बरकरार नहीं रखा जा सकता।

6. दूसरी ओर, उत्तरदाता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ताओं की ओर से दिए गए तर्क का विरोध किया। उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाता द्वारा दायर विभाजन मुकदमा बनाए रखने योग्य है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि उत्तरदाता का तब जन्म भी नहीं हुआ था जब मूल याचिकाकर्ता द्वारा विभाजन का मुकदमा दायर किया गया था और जब इसका फैसला सुनाया गया था। मूल

याचिकाकर्ता के विभाजन मुकदमे के खिलाफ अपील को 1989 में उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था जब उत्तरदाता नाबालिग था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि चूंकि उत्तरदाता का पिता विभाजन मुकदमा दायर करने के समय नाबालिग था, इसलिए न्यायालय द्वारा उसके हित की रक्षा की जानी चाहिए थी, लेकिन न्यायालय द्वारा नियुक्त अभिभावक-सलाहकार द्वारा नाबालिग उत्तरदाता की ओर से कोई लिखित बयान दायर नहीं किया गया था। यहां तक कि उत्तरदाता के दादा ने भी कोई रुचि नहीं ली और कोई सबूत पेश नहीं किया। यह उत्तरदाताओं के परिवार के खिलाफ एक *एकतरफा* आदेश था और उत्तरदाता के दादा और पिता की लापरवाही के कारण उनके अधिकार गंभीर रूप से प्रभावित और पूर्वाग्रहित हुए हैं। उत्तरदाता के पिता और दादा के लापरवाह और उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण, संयुक्त परिवार के हिस्से और हित का सही निर्णय नहीं लिया गया है। इस प्रकार, वादी का हित खतरे में पड़ गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि हालांकि पहले के विभाजन मुकदमे में एक समझौता हुआ था, लेकिन उत्तरदाता के पिता के समुचित प्रतिनिधित्व न होने के कारण वह समझौता दोषपूर्ण हो गया। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि इन कारणों से, मुकदमा वर्जित नहीं है और याचिकाकर्ता वर्तमान वाद में पूर्ववर्ती समझौते तथा उस समझौते के आधार पर पारित डिक्री को चुनौती दे सकता है। इसी तरह, *पूर्व न्याय निर्णयण* के सिद्धांत का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता था क्योंकि उत्तरदाता पहले के मुकदमे में पक्षकार नहीं था और यहां तक कि उसके पिता भी नाबालिग थे और कोई उचित प्रतिनिधित्व नहीं था।

7. मैंने पक्षकारों की विरोधाभासी दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। यह निर्विवाद है कि वही वाद-संपत्ति पूर्व में विभाजन वाद संख्या 136/1970 में मूल याचिकाकर्ता द्वारा उत्तरदाता के दादा, उनके भाइयों एवं उत्तरदाता के पिता जो उस समय अवयस्क बताए गए थे के विरुद्ध वाद दायर किया गया था। यह भी वाद संख्या 56/2008 के वादपत्र के अनुच्छेद 12 से स्पष्ट होता है कि वाद संख्या 136/1970 के लंबित रहने के

दौरान उत्तरदाता के पिता ने वयस्कता प्राप्त कर ली थी। आगे यह तथ्य भी सामने आता है कि उक्त विभाजन वाद में डिक्री पारित की गई थी। यदि उत्तरदाता के पिता को कोई आपत्ति थी, तो वयस्कता प्राप्त करने के तीन वर्षों के भीतर उन्हें उक्त डिक्री को निरस्त कराने हेतु विधिक कदम उठाना आवश्यक था, जो उन्होंने नहीं किया। इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने न्यायालय के आदेशों को स्वीकार कर लिया और विभाजन में प्राप्त अपने हिस्से की भूमि का एक अंश, जैसा कि दिनांक 18.07.2018 के विक्रय विलेख से स्पष्ट है, उत्तरदाता के पक्ष में विक्रय कर दिया। यह भी प्रतीत होता है कि उत्तरदाता के पिता एवं दादा ने वर्ष 1978 में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील संख्या 349/1978 दायर की थी, जिसे वर्ष 1989 में खारिज कर दिया गया। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उत्तरदाता के पूर्वजों द्वारा उनके हितों की रक्षा के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। जब उत्तरदाता मूल विभाजन वाद का पक्षकार नहीं था, तो इस समय उसके द्वारा किए गए किसी भी प्रकार के आरोप, उसे कोई अधिकार नहीं प्रदान कर सकते। उत्तरदाता को उन तथ्यों को बदलने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो वर्ष 1989 में ही, यानी उसके पिता और दादा द्वारा दायर पहली अपील खारिज होने के बाद, अंतिम रूप ले चुके हैं। इसके अलावा, उत्तरदाता अपने पूर्वजों, अर्थात् पिता और दादा और अपने भाइयों के कार्यों को चुनौती दे रहा है, जबकि वह स्वयं उस समय गर्भ में भी नहीं था और उसका कोई अधिकार भी नहीं था। यदि उत्तरदाता के पिता को कोई शिकायत थी, तो वह इस संबंध में कदम उठा सकते थे और अपने अधिकारों पर जोर दे सकते थे। इसकी दो संभावनाएँ हैं। यदि वैधानिक सीमा अवधि के भीतर ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया है, तो अधिकार समाप्त हो जाता है और यदि उत्तरदाता के पिता ने कोई कदम उठाया और उसमें विफल रहे, तो फिर से वही परिणाम रहेगा। इस प्रकार, वादपत्र के अवलोकन मात्र से, जो तथ्य सामने आता है वह यह है कि वादपत्र उसी विषयवस्तु से संबंधित है, उसी कारण से और उन्हीं पक्षकारों के बीच दायर

किया गया है, जिसके संबंध में विभाजन वाद संख्या 136/1970 दायर था और जो 1989 में प्रथम अपील संख्या 349/1978 के खारिज होने के साथ अंतिम रूप ले चुका है।

8. अब, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि वाद में तथ्यात्मक आधार पर पर्याप्त कारण कार्यवाई का विवरण है और साक्ष्य पर विचार किए बिना मामले का निपटारा करना संभव नहीं था। विद्वान विचारण न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि वादपत्र किसी भी कानून द्वारा प्रतिबंधित नहीं था। आक्षेपित आदेश की समीक्षा करने पर पता चलता है कि यह एक अस्पष्ट और गैर-व्याख्यात्मक आदेश है, जिसमें इस मुद्दे पर महत्वपूर्ण तथ्यों और कानून पर कोई चर्चा नहीं की गई है। आक्षेपित आदेश की समीक्षा से यह भी स्पष्ट होता है कि इसमें वादपत्र में स्वीकार किए गए तथ्यों का पूर्व में दायर विभाजन वाद संख्या 136/1970 के संदर्भ में प्रभाव क्या होगा, इस पर कोई चर्चा नहीं की गई है, जो कि उन्हीं पक्षों के बीच था।

कोड की धारा 11 निम्नलिखित है:

“11. Res judicata. (पूर्व न्याय निर्णयन)— कोई भी न्यायालय उस वाद या मुद्दे की फिर से सुनवाई नहीं करेगा, जिसमें विवाद सीधे और महत्वपूर्ण रूप से वही हो जो पहले के वाद में, उन्हीं पक्षकारों के बीच या उनके उत्तराधिकारियों के बीच, जो एक ही अधिकार के तहत मुकदमा लड़ रहे थे, किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पहले सुना गया हो और अंतिम रूप से निर्णयित किया जा चुका हो।

स्पष्टीकरण I:- पद “पूर्व वाद” का तात्पर्य उस वाद से है जिसका निर्णय वर्तमान वाद से पहले हो चुका हो, चाहे वह वाद वर्तमान वाद से पहले दायर किया गया हो या नहीं।

स्पष्टीकरण II.- इस धारा के प्रयोजन के लिए, किसी न्यायालय की सक्षमता इस बात से अप्रभावित रहेगी कि उस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील का कोई अधिकार है या नहीं।

स्पष्टीकरण III. - उपरोक्त वर्णित विषयवस्तु को पूर्व वाद में एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया होना चाहिए और दूसरे पक्ष द्वारा या तो स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से अस्वीकार या स्वीकार किया गया होना चाहिए।

स्पष्टीकरण IV- कोई भी ऐसा विषय जो पूर्व वाद में बचाव या दावा का आधार बनाया जा सकता था और बनाया जाना चाहिए था, उसे यह माना जाएगा कि वह विषय उस वाद में सीधे और महत्वपूर्ण रूप से विवाद में था।

स्पष्टीकरण V -वाद में दावा की गई कोई भी राहत, जो डिक्री द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं की गई है, इस धारा के प्रयोजनों के लिए अस्वीकार की गई मानी जाएगी।

स्पष्टीकरण VI- जब व्यक्ति किसी सार्वजनिक अधिकार या ऐसे निजी अधिकार के संबंध में, जो उनके और दूसरों के लिए समान रूप से दावा किया गया हो, ईमानदारी से मुकदमा करते हैं, तो इस धारा के प्रयोजन के लिए, उस अधिकार में रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों को ऐसा माना जाएगा कि वे उन्हीं व्यक्तियों के अधीन दावा कर रहे हैं जो मुकदमा कर रहे थे।

स्पष्टीकरण VII-इस धारा के प्रावधान किसी डिक्री के निष्पादन की कार्यवाही पर भी लागू होंगे, और इस धारा में किसी वाद, मुद्दे या पूर्व वाद का उल्लेख क्रमशः उस डिक्री के निष्पादन की कार्यवाही, ऐसी कार्यवाही में उठे प्रश्न, और उस डिक्री के पूर्व निष्पादन की कार्यवाही के रूप में किया जाएगा।

स्पष्टीकरण VIII- कोई ऐसा मुद्दा जो सीमित अधिकार-क्षेत्र वाली किसी सक्षम न्यायालय द्वारा सुना गया हो और अंतिम रूप से तय कर दिया गया हो, वह पुनः पूर्व न्याय निर्णयन के रूप में कार्य करेगा, भले ही वह सीमित अधिकार-क्षेत्र वाली न्यायालय उस वाद के बाद या उस वाद को सुनने के लिए सक्षम न रही हो, जिसमें वह मुद्दा बाद में उठाया गया है।

9. यदि कोई विषयपूर्व वाद में उन्हीं पक्षकारों के बीच प्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण रूप से विवाद का विषय रहा है, तो उसे किसी नए वाद में पुनः नहीं सुना जाएगा। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है। इसके बाद, आदेश 7 नियम 11 इस प्रकार है:

“11. वाद पत्र का अस्वीकरण — वाद पत्र को निम्नलिखित स्थितियों में अस्वीकार कर दिया जाएगा:—

(ए) जब उसमें कोई कारण-कार्रवाई प्रकट नहीं होता है;

(बी) जब वादी द्वारा मांगी गई राहत का मूल्यांकन कम करके किया गया हो, और न्यायालय द्वारा वादी को एक निश्चित समय के भीतर उस मूल्यांकन को सुधारने का निर्देश दिए जाने पर भी वादी ऐसा करने में असफल रहता ।

(सी) जब दावा की गई राहत का मूल्यांकन ठीक प्रकार से किया गया है, लेकिन वाद पत्र अपर्याप्त मुद्रांकित कागज पर लिखा गया है, और न्यायालय द्वारा वादी को एक निर्धारित समय में आवश्यक स्टाम्प-पेपर प्रस्तुत करने का निर्देश दिए जाने के बाद भी वादी ऐसा करने में असफल रहता है, तो वाद पत्र खारिज कर दिया जाएगा।”

(डी) जहाँ वाद पत्र में दी गई जानकारी से प्रतीत होता है कि यह मुकदमा किसी भी कानून द्वारा वर्जित है,

(ई) जहाँ वाद पत्र की प्रति प्रस्तुत नहीं की गई हो;

(एफ) जहाँ वादी नियम 9 के प्रावधानों का पालन करने में विफल रहता है;

बशर्ते कि न्यायालय द्वारा मूल्यांकन सुधारने या आवश्यक स्टाम्प-पेपर जमा करने के लिए निर्धारित किया गया समय तभी बढ़ाया जाएगा जब न्यायालय कारणों को लिखित रूप में रिकॉर्ड करे कि वादी को किसी असाधारण कारणवश निर्धारित समय में सुधार करने या आवश्यक स्टाम्प-पेपर जमा करने से रोका गया, और यदि इस समय को बढ़ाने से इनकार किया जाए तो इससे वादी को गंभीर अन्याय होगा।”

10. अब, आदेश 7 नियम 11 (डी) विशेष रूप से एक मुकदमे को प्रतिबंधित करता है जो वाद में बयान से किसी भी कानून द्वारा वर्जित प्रतीत होता है। शायद, विद्वान विचारण न्यायालय इस बात को समझने में चूक गये कि उत्तरदाता का मुकदमा संहिता की धारा 11 के तहत प्रदान किए गए *पूर्व न्यायिक निर्णय* के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है।

11. यहां पहले किए गए तथ्यों की चर्चा से, मुझे यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि विभाजन वाद सं. 56/2008 के वाद में किए गए कथन स्पष्ट रूप से दोनों मुकदमों में मुद्दे को सीधे और पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते हैं और पक्ष भी समान हैं। इसलिए, बाद का विभाजन वाद सं. 58/2008 पूर्व न्यायिक निर्णय के सिद्धांत से प्रभावित है और इसलिए, वाद आदेश 7 नियम 11 (डी) के तहत खारिज होने योग्य है। यह बात विचारण न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से नज़रअंदाज़ कर दी गई है और इस मुद्दे पर साक्ष्य पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

12. एक अन्य पहलू जिसे भी विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा नज़रअंदाज़ कर दिया गया था, वह यह था कि क्या उसे समन्वय क्षेत्राधिकार की न्यायालय द्वारा विभाजन वाद सं. 136/1970 में पारित डिक्री को निरस्त करने का अधिकार क्षेत्र मिला है या क्या उसे वादी/उत्तरदाता के कहने पर, जो पहले की कार्यवाही के दौरान पैदा भी नहीं हुआ था, वर्तमान कार्यवाही में डिक्री पारित करके, उत्तरदाता के पिता और दादा के साथ धोखाधड़ी से कथित रूप से प्राप्त किए गए समझौते को निरस्त करने का अधिकार क्षेत्र है।

13. संहिता का आदेश 23 नियम 3 ए विशेष रूप से इस आधार पर एक डिक्री को निरस्त करने के उद्देश्य से किसी अन्य मुकदमे की स्थापना पर रोक लगाता है कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित थी वह वैध नहीं था। संहिता का आदेश 23 नियम 3 ए निम्नानुसार है:

“3A. वाद का निषेध — कोई वाद इस आधार पर स्वीकार्य नहीं होगा कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित है, वह समझौता वैध नहीं था।”

जब विधायिका ने यह प्रावधान किया है कि इस आधार पर डिक्री को निरस्त करने के लिए कोई मुकदमा नहीं होगा कि जिस समझौते पर डिक्री पारित की गई थी वह वैध नहीं था, तो उत्तरदाता के मुकदमे को आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी। इसलिए, संहिता के आदेश 23 नियम 3ए के विशिष्ट प्रावधान के आलोक में, फिर से वादी/उत्तरदाता का मुकदमा वर्जित है।

14. सामान्यतः, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत न्यायालय, संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अंतर्गत दायर याचिका को खारिज करने वाले आदेश के विरुद्ध दायर याचिका पर विचार नहीं करेगा। लेकिन इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, तथा अधीनस्थ न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में न्यायिक क्षेत्राधिकार का गंभीर रूप से गलत उपयोग कर पूरी तरह से विकृत निष्कर्ष दर्ज किए जाने के कारण, वर्तमान याचिका को स्वीकार किया गया है। अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका की 'स्वीकार्यता' और 'पर्याप्तता' के बीच का अंतर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **राजश्री अग्रवाल @ रामश्री अग्रवाल बनाम सुधीर मोहन एवं अन्य, 2022 एस सी सी आनलाईन एस सी 1775** में स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह कहा गया कि अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उपाय एक संवैधानिक उपाय है। और यदि किसी मामले में न्यायालय की राय में याचिकाकर्ता को दी.प्र.सं. के तहत कोई अन्य प्रभावी उपचार उपलब्ध है, तो न्यायालय अनुच्छेद 227 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग न करने का निर्णय ले सकता है। लेकिन यह कहना कि अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका बिल्कुल भी विचारणीय नहीं है, यह विधिक रूप से स्वीकार्य नहीं है। एक बार जब मामला इस न्यायालय के समक्ष आ गया है और उस पर सुनवाई हो चुकी है, तो याचिकाकर्ता को कोई और याचिका दाखिल करने के लिए वापस

भेजना अनुचित होगा और इससे केवल समय की बर्बादी होगी, खासकर जब यह न्यायालय इस याचिका पर अनुच्छेद 227 के तहत विचार कर सकता है।

15. पूर्ववर्ती चर्चा के आलोक में, मैं इस ठोस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पूर्णतः क्षेत्राधिकार की त्रुटि के अंतर्गत पारित किया है, अतः दिनांक 25.10.2018 को पारित किया गया आदेश, जो कि विभाजन वाद संख्या 56/2008 में विद्वान प्रथम उप न्यायाधीश, दरभंगा द्वारा पारित किया गया था, उसे निरस्त किया जाता है। फलस्वरूप, दिनांक 04.09.2015 एवं 07.06.2017 को दायर याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं।

16. इस प्रकार, वर्तमान याचिका स्वीकार की जाती है।

(अरुण कुमार झा, न्यायमूर्ति)

वी. के. पांडे

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।